चित्रावली

(१) स्तुति खंड ।

मंगला-चरण और ईश्वर-स्तुति ।

आदि बखानौं सोई चितेरा, यह जग चित्र कीन्ह जेहि केरा ।
कीन्हेसि चित्र पुरुष औ नारी, को जल पर अस सकै सँवारी ॥
कीन्हेसि जोति सूर ससि तारा, को अस जोति सकै जग पारा ।
कीन्हेसि बचन वेद जेहि सीखा, को अस चित्र पवन पर लीखा ॥
अस विचित्र लिखि जानै सोई, वहि बिनु मेट सकै नहि कोई ।
कीन्हेसि रंग स्याम औ सेता, राता पीत और जग जेता ॥
कीन्हेसि रूप बरन जहँ ताईं, आपु अवरन अरूप गुसाईं ।
अगिनि पवन रज पानि के, भाँति भाँति ब्योहार ।
आपु रहा सब माँहि मिलि, को निगरावै[1] पार ॥ १ ॥
सो करता सब माँह समाना, परगट गुपुत जाइ नहि जाना ।
गुपुत कहउँ तौ गुपुत न होई, परगट कहउँ न परगट सोई ॥
दूर कहउँ तौ दूर न लेखा, नियरे कहउँ तौ जाइ न देखा ।
सब वहि भीतर वह सब माहीं, सबै आपु दूसर[2] कोउ नाहीं ॥
जो सब आपु रहा जग पूरी, तासौं कहा नेर औ दूरी ।
दूसर जगत नामु जिन पावा, जैसे सहरी[3] उदधि कहावा ॥
ज्ञान नैन जो देखै कोई, बारिध बिना आन नहि होई ।

१—बिलगावे, अलग करे । २—एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म । मि० सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन । ३—शफरी । एक प्रकार की मछली ।

Scanned by CamScanner

जइवाँ सिन्धु अपार अति, बिन तट बिनु परिमान ।
सकल सृष्टि तेहिमाँ गुपुत, बालू कनक समान ॥ २ ॥

करता जिन जग रूप सँवारा, तेहिक रूप को बरनइ पारा ? ।
आपु अमूरति मुरति उपाई[1], मूरति माँती[2] तहाँ समाई ॥
मन के चरन पंगु जेहि ठाईं, बपुरी जीभ चलइ कहँ ताईं ।
मन की डीठ नैन जहँ मूँदै, सेा मगु जीभ चरन क्यों खूँदै[3] ॥
परगट गुपुत बिधाता सोई, दूसर और जगत नहिँ कोई ।
है सब ठाउँ नाहिँ कोउ ठाईं, मुनिगन लखहिँ कि अलखगु साईं ॥
सृष्टि अनेक लखे नहि पाई, सिरजनहार लखा केहि जाई ॥

अलख अमूरत सेाइ बिधि, लखै न मूरति कोय ।
सेा सब कीन्ह जेा चाहा, कीन्ह चहै सेा होय ॥ ३ ॥

कीन्हेसि जेा अति गिरवर[4] गरुवा, चहइ तो करै तृणहु ते हरुवा[5] ।
औा पुनि त्रिनहि बज्र करि धरई, मुनिवर लागहिँ तौ नहि टरई ॥
कीन्हेसि बारिध अगम अपारा, चहइ तेा करै जैस लघु तारा[6] ।
औा तारहि को समुँद बनावै, मेरु बबूला जैस तरावै ॥
कीन्हेसि अगिन बीच अति ज्वाला, चहै तेा करै हिमंचल पाला ।
औा पानी महँ अगिन सँचारै, पाहन मेलि जैस तृन जारै ॥
भंजइ गढ़इ बिधाता सोई, दूसर और जगत नहिँ कोई ।

सेाई करता रमि रहा, रेाम रेाम सब माहिँ ।
तिन सब कीन्ह सिरिष्ट[7] यह, गाहक[8] कीहेा नाहिँ ॥ ४ ॥

सेा करता जेहि काहु न कीन्हा, सब कहँ जिवन जन्म जेइ दीन्हा ।
दीन्हेसि काया जेहि जग पोषा, दीन्हेसि माया जेहि न सँतोषा ॥

१—उपजाया, उत्पन्न किया । मि० पहिले ओषध भूरि बनाई । ता पीछे सब रोग उपाई । २—मत्त, भ्रम में पड़ी हुई । ३—सं० क्रन्दन । कूदै, फाँदै । ४—पर्वत, पहाड़ । ५—हलका । ६—ताल । ७—सृष्टि । ८—सं० अवगाहक = जानने वाला, ज्ञाता ।

Scanned by CamScanner

(६) चित्रदर्शन खंड।

वै भूले तेहि कौतुक जाई, इहाँ कुँअर जागा अँगिराई।
नैन उघारि देखि चितसारी, रहा अचक उठि बैठ सँभारी॥
देखा मँदिर एक बहु भाँती, चित्र सँवारे पाँतिन्ह पाँती।
कनक खंभ औ कनक केवारा, लागे रतन करहिँ उँजियारा॥
ऊपर छात अनूप सँवारे, करि कटाव सब कंचन-ढारे।
कीन्ह उरेह सूर ससि जोती, और नषत सब, मानिक मोती॥
हेठ अपूरब डासन डासा, जहँ तहँ आउ सुगँध की वासा॥

भयो कुँअर चित अचक[1] एक, मनहीँ माँहि गुनाउ[2]।
काकर लेान मँदिर यह, औ मोहि को लै आउ॥ ८२॥

बहुरि कुँअर जो पाछे देखा, अपुरुब रूप चित्र एक पेखा।
जानि सजीउ जीउ भरमाना[3], भयो ठाढ़ उठि कुँअर सुजाना॥
देखि रूप मुख परचै खरा, बिधि एह चुरइल कै अपछरा।
किए सिँगार संग नहिँ कोई, धरैँ भेष भावन है सेाई॥
जग न होइ मानुष अस रूपा, को पावै अस रूप सरूपा।
निहचै, अहोँ सरग पर आवा, सुरकन्या भौ, दिष्टि मेरावा॥
निहचै एह सुरपति अपछरा, देखत मोर चित्त जिन हरा।

हौं तो मंडप देव के, सेावत अहा सुभाउँ।
होइ परसन कोउ देवता, लै आवा एहि ठाउँ॥ ८३॥

भयो भाग्य मम दाहिन आजू, जेहि बिधि दीन्ह आनि यह साजू।
कै वहि जन्म पुन्य कछु कीन्हा, तेहि परसाद दरस इन्ह दीन्हा॥
कै बेनी सिर करवट सारा, कै कासी तन तप महँ जारा।
कै मथुरा बसि हरि जस गावा, ताहि पुन्य यह दरसन पावा॥

Scanned by CamScanner

कै काहू की इंछा पूरी, बल बैसाउ[1] कीन्ह दुख दूरी।
कै सुदिष्ट अपने विधि देखा, आनि देख वह रूप सुरेखा॥
सुनत अहा कविलास सोहावा, (क)सेा विधि मोहिँ आन देखरावा।
मन रहसहि चिंतो त्रितहि, रहा मौन होइ भूप।
रसना भरम न बोलई, लोएन[2] भूले रूप॥ ८४॥
छिन एक गुनि मन महँ बहु भावा, पुनि ढाढ़स कै आगेँ आवा।
नियरे होइ जो बदन निहारा, रहे निहारि मीन जिमि तारा॥
तब जानेसि यह चित्र अनूपा, हर्‌यो चित्र लखि बदन सरूपा।
नैन लगाय रहेउ मुख बेारा[3], चित्र चाँद भा कुँअर चकोरा।
सुधि बिसरी बुधि रही न हीये, गा बैराइ प्रेम मद पीये॥
कबहूँ सीस पाइ तर धरही, कबहुँ ठाढ़ होइ बिनती करई।
कबहूँ चाहै अंचल गहा, हाथ न आव अचक मन रहा॥
कबहूँ परै अचेत भुइँ, कवहूँ होइ सचेत।
रूप अपार हिएँ समुझि, मुख जोवै करि हेत॥ ८५॥
निरषत जोति नैन जौ पाई, परी डीठ आला पर जाई।
देखा आहि लिखै कर साजू, जाते होइ चित्र कर काजू॥
साँवर अरुन पीत औ हरा, जो रँग चाहिय सो सब धरा।
कहेसि बिचारि बूझि मन माहीँ, कालिह आजु अस होइ कि नाहीँ॥
आपन चित्र लिखौं एहि ठाऊँ, मुकुरहिँ जोति जोति कछु पाऊँ।
आपनि जोति सूर उँजियारा, सूर कि जोति चंद मनियारा॥
हिएँ विचारि चित्र तब लिखा, वहि क चरन तर आपन सिखा।
साजि सो मूरति आपनी, ले सब रँग वहि केर।
कै सुजान सो जानई, कै सुजान यह फेर॥ ८६॥

Scanned by CamScanner